उपन्यास की पृष्ठभूमि एवं हिन्दी उपन्यास में वैश्वीकरण

1.1 उपन्यास : अर्थ एवं स्वरूप

हिन्दी साहित्य में उपन्यास नवीनतम विधाओं में से एक है। अँग्रेंजी में जिसे नॉवेल कहते हैं, बंगाल में उसे 'उपन्यास' नाम से अभिहित किया जाता है और बंगाल के समान ही हिन्दी में यह विधा उपन्यास नाम से प्रचलित है। अँग्रेंजी में "नॉवेल" शब्द लैटिन "Novel" शब्द से व्युत्पन्न होकर आया। "Novus" शाब्द का अर्थ नवीन है। अँग्रेजी में "नॉवेल" शब्द कुछ दिनों तक "नवीन" और "लघु गद्य कथा" दोनों अर्थ को साहित्य विधा के रूप में यह प्रतिष्ठित हो गया है, वह अर्थ भी निश्चित हो गया।

इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि इस तथ्य नवीनता का द्योतन तो कराता ही है, साथ ही वह प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में वर्तमान जीवन से है। इस सामान्याभिधान का कुछ अंश अब भी विद्यमान है। उपन्यास जो सुंदर भूत के समय का चित्रण करता है, उसे ऐतिहासिक उपन्यास कहते हैं। यह एक विशिष्ट नाम है। यह संभवतः इस रूप में इस कारण से ग्रहण किया जाता है कि इसमें जिन वस्तुओं का निरूपण होता है, उनकी वास्तविकता संदिग्ध ही रहती है, क्योंकि उन्हें न तो लेखक ने और न तो पाठकों ने ही प्रत्यक्ष रूप में अनुभूत किया है। "नवीन" अर्थ को प्राधान्य देने के कारण गुजराती के विद्वान "नॉवेल" को नवल कथा कहते हैं और उर्दू साहित्य में "नॉवल" शब्द ही ग्रहण कर लिया गया है। मराठी में "नॉवेल" को "कादंबरी" कहते हैं। संस्कृत के सुप्रसिध्द ग्रंथ "कादंबरी" की रोचकता, सरलता और कथावस्तु के आधार पर यह नामकरण हुआ है जो एक ओर परम्परा का प्रकाशन करता है तो दूसरी ओर "नॉवेल" की मूलभूत विशेषता की ओर इंगित करता है।

हिन्दी में व्यावहारिक रुप से उपन्यास शब्द से भी कतिपय विशेषताओं का बोध होता है। उपन्यास – उप + नि + उस + घञ के योग से बना है, जिसके अनेक अर्थ हैं, निकलकर रखना, धरोहर, अमानता, वक्तव्य, प्रस्ताव, सुझाव भूमिका प्रस्तावना संकेत उल्लेख आदि।

"उप" उपसर्ग से निकट का बोध होता है और "न्यास" थाती या धरोहर का बोधक है। साधारण रूप में यह ग्रहण किया जा सकता है कि मनुष्य के निकट रखी हुई वस्तु। वर्तमान संदर्भ में इसका अर्थ विस्तृत हो गया है – वह वस्तु या कृति जिसको पढ़कर ऐसा लगे कि यह हमारी ही है, इसमें हमारे ही जीवन का प्रतिबिम्ब है, इसमें हमारी ही कथा हमारी ही भाषा में कही गई है। आधुनिक युग में जिस साहित्य विशेष के लिए इस शब्द का प्रयोग किया जाता है, उसकी प्रकृति को स्पष्ट करने में यह शब्द सर्वथा है। यों तो उपन्यास शब्द का प्रयोग प्राचीन संस्कृत साहित्य में भी है।

उपन्यास निस्संदेह काल्पनिक साहितयिक विधा है, तो भी इसकी विषय वस्तु प्रायः यथार्थ घटनाओं से गृहित की जाती है और लेखक जो वर्णात्मक प्रणाली को अपनाता है, वह मूलतः यथार्थ का वातावरण निर्मित करता है। उपन्यास का दैत महाकाव्य से सर्वथा विपरीत होता है जो यदि पूर्णतः ऐतिहासिक नहीं होता तो कुछ सीमा तक अकाल्पनिक अवश्य होता है। यद्यपि महाकाव्य का विषय पौराणिक ही होता है, वह और इसमें जो वर्णात्मक प्रणाली अपनाई जाती है वह ऐतिहासिक दृष्टि से अधिक स्पष्ट हैः उपन्यास का उदय सभ्यता के अधकि विकसित स्तर पर हुआ है। औपन्यासिक दृष्टि तथ्य और कल्पना के पारस्परिक अंतर पर अधिक रही है। उपन्यासकार सामान्यरूप में अपनी कल्पना को तथ्य पर आधृत करता है और बहुत से आरम्भिक उपन्यासों में तथ्य को यथार्थ अधिक रूप में प्रस्तुत करने के अभिप्राय से आत्मकथाओं और जीवनियों का अनुकरण किया गया है। उपन्यास की कहानी का यथेष्ट लम्बा होना एक ऐसा प्रश्न है जो कठिन समस्या उत्पन्न कर देता है। नाटक का अभिमान किसी निश्चित अवधि तक सीमित हो सकता है, परन्तु उपन्यास के सम्बन्ध में ऐसा नहीं कहा जा सकता, उसकी कोई सीमा निश्चित नहीं की जा सकती। कुछ लोग हजार से अधिक शब्द होना आवश्यक मानते हैं, पर इस प्रकार की कोई सीमा निर्धारित नहीं की जा सकती।

उपन्यास की परिभाषा में यह कहा गया है कि वह भूत या वर्तमान समय के पात्रों और क्रियाओं का चित्रण करता है जो यथार्थ जीवन का प्रतिनिधित्व करता है। परिभाषा का यह अंश हमें समस्या के मुख्य बिंदु की ओर ले जाता है। उपन्यास में जिस यथार्थ पर

जोर दिया जाता है, वह यथार्थ महाकाव्य के यथार्थ की तुलना में अधिक लौकिक और अधिक तथ्यात्मक होता है। उपन्यास के जो पात्र होते हैं वे महाकाव्य के पात्रों की तुलना में सामान्य जीवन के आयाम से बाहर नहीं प्रतीत होते और उनकी क्रियाएँ सामान्य जीवन से अधिक सम्बन्ध रखती हैं और अधिक स्वाभाविक होती हैं।

कम या अधिक जटिल कथानक अधिक महत्वपूर्णता उत्पन्न करता है जो उपन्यास को अन्य कल्पना प्रधान गद्य कल्पों से पृथक सिद्ध कर देता है। उसकी तुलना में उपन्यास का वर्णन–विन्यास उच्च्य स्तर का होता है। कहानी काल क्रम में घटनाओं का वर्णन है, जबकि कथानक में घटनाएँ कार्य–कारण की श्रृंखला में व्यवस्थित की जाती हैं।

नॉवल के अर्थ में उपन्यास शब्द का प्रयोग बंगला कथा साहित्य में सर्वप्रथम 1882 ई. में भूदेव मुखोपाध्याय ने किया था जिसे बंकिमचन्द्र चटर्जी ने अपनी रचनाओं द्वारा लोकप्रिय बनाया। हिन्दी में 1875 ई. में उपन्यास शब्द का प्रयोग आरम्भ हुआ है। “उपन्यास पद का प्रथम प्रयोग भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने 1875 ई, में हरिश्चन्द्र चन्द्रिका के फरवरी और मार्च 1875 के अंकों में धारावाहिक रूप में प्रकाशित मालती कथा में किया था”। यद्यपि इससे पूर्व नॉवेल शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग करने वाले भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ही थे।

सामान्य रूप में उपन्यास की परिभाषा देना संभव नहीं है, किन्तु व्यापक दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि, जिसका आधार कथा है, वह कथा वास्तविक हो सकती है, अथवा कल्पित भी हो सकती है। कथा की प्रस्तुति में कल्पना का योग नितान्त आवश्यक है। कुतूहल के साथ मानवीय भाव–भूमि का प्रकाशन उसका चरम लक्ष्य होता है और किसी न किसी प्रकार के सिद्धान्त की आधार–भूमि पर उसकी निर्मित होती है।

उपन्यास मूलतः जीवन और जगत् का विषद रूप में प्रकाशन करता है। लेखक का जीवन और जगत् की अनूभूति जितनी व्यापक और गहरी होगी, उसका औपन्यासिक वर्णन भी उतना ही व्यापक और गंभीर होगा। उपन्यास में लेखक का निजी जीवन–दर्शन प्रतिबिम्बित होता है। पाठक सामान्यतः उसी के माध्यम से जीवन और जगत् को देखता

है। यदि लेखक का कोई वैयक्तिक जीवन दर्शन नहीं है तो यह बात निश्चित है कि वह अपने पाठकों पर किसी प्रकार का प्रभाव उत्पन्न नहीं कर सकता।

उपन्यास की कथा काल्पनिक होती है, किन्तु वह यथार्थ जगत् का ही आभास प्रस्तुत करती है। इसी कारण हम उसे काल्पनिक यथार्थ अथवा औपन्यासिक यथार्थ कहते हैं। यह औपन्यासिक यथार्थ जागतिक यथार्थ की तुलना में अधिक प्रभावशाली होता है।

लेखक लौकिक अलौकिक किसी प्रकार की भी कथा का आश्रय गृहण कर सकता है, किन्तु वह जो भी प्रस्तुत करेगा, उसमें उसकी निजी अनुभूति, संवेदना भावकोश का ही प्रकाशन होगा। इस प्रकार उपन्यास मानवीय अनुभूति की सहज अभिव्यक्ति का अत्यन्त प्रभावशाली माध्यम है। उपन्यास वास्तविक जीवन की काल्पनिक कथा है।

प्रेमचन्द के अनुसार "मैं उपन्यास को मनुष्य जीवन का चित्र मात्र समझता हूँ। मानव – चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्व है।"....1

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार "वर्तमान जगत् में उपन्यासों की बड़ी शक्ति है। समाज जो रूप पकड़ रहा है, उसके भिन्न–भिन्न वर्गों में जो प्रवृत्तियाँ उत्पन्न हो रही हैं, उपन्यास उनका विस्तृत प्रत्यक्षीकरण ही नहीं करते, आवश्यकतानुसार उनके ठीक विन्यास, सुधार अथवा निराकरण की प्रवृत्ति को भी उत्पन्न कर सकते हैं।"....2

लोक या किसी जनसमाज के बीच काल की गति के अनुसार जो मूढ़ और चित्य परिस्थितियों खड़ी होती रहती हैं, उनको गोचर रूप में सामने लाना और कभी–कभी निस्तार का मार्ग भी प्रत्यक्ष करना उपन्यास का काम हैं। उपन्यास और काव्य के पारस्परिक घनिष्ठ सम्बन्ध पर जोर देते हुए वे कहते है, ''जगत और जीवन के नाना पक्षों को लेकर प्रकृत काव्य भी बराबर चलेगा और उपन्यास भी। एक चित्रण और भाव–व्यंजना द्वारा विविध परिस्थितियों की उद्‌भावना को, उपन्यास नहीं खोलती है।''....3

आचार्य डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी उपन्यास की परिभाषा देते हुए कहते हैं "उपन्यास आधुनिक युग की देन है। नए गद्य के प्रचार के साथ–साथ उपन्यास का प्रचार हुआ है।"... .4 आधुनिक उपन्यास केवल कथा मात्र नहीं हैं, और पुरानी कथाओं और आख्यायिकाओं की भाँति कथा सूत्र का बहाना लेकर उपमाओं, रूपकों, दीपकों और लक्षणों को दिखाने का कौशल भी नहीं है। यह आधुनिक व्यक्तिकतावादी–दृष्टिकोण का परिणाम है।

1.2 उपन्यास के तत्व और प्रकार

उपन्यासों का संबंध घटनाओं और व्यापारों से, अर्थात उन बातों से होता है जो सहन या संपादित की जाती हैं। इन्हीं को हम उपन्यास "वस्तु" कहते हैं। दूसरे ये घटनाएँ और व्यापार मनुष्यों के आश्रित होते हैं, अर्थात उन बातों को सहने या करनेवाले मनुष्य होते हैं जो व्यापार की श्रृंखला को स्थिर रखते हैं। इन्हें "पात्र" कहते हैं। उन पात्रों का आपस में वार्तालाप तीसरा तत्व है जिसे "कथोपकथन" कहते हैं और जिसका "चरित्र–चित्रण" से बड़ा घनिष्ठ संबंध है। ये सब व्यापार या घटनाएँ किसी समय या स्थान में होनी चाहिए, जहाँ और जिसमें पात्रों को अपना कार्य करना तथा सुख–दुख भोगना पड़ता है। इसे "देशकाल" कहते हैं। यह चौथा तत्व है।

पाँचवा तत्व "शैली" और छठा "उद्देश्य" है। प्रत्येक उपन्यास में लेखक को जीवन संबंधी अपने विचारों को परोक्ष रूप में प्रकट करना पड़ता है। इसके निमित से अपने विचारों के अनुसार घटनाओं का क्रम–स्थापन, पात्रों के राग–भाव आदि का प्रदर्शन तथा वस्तु निर्देश इस प्रकार से करना पड़ता है जिसमें वह अपने सांसारिक भाव और जीवन के लक्ष्य को प्रकट कर सके।

उपन्यास के तत्व

उपन्यास के तत्व

उपन्यास के छः प्रमुख तत्व

1. वस्तु
2. पात्र
3. कथोपकथन
4. देश–काल
5. शैली
6. उद्देश्य

उपन्यास की कथा कहने के तीन ढंग हैं। पहले तो उपन्यासकार इतिहासकार का स्थान ग्रहण करके वर्णनीय कथा से अपने को अलग रखकर अपने वस्तु–विधान का क्रमशः उद्घाटन करता हुआ पढ़नेवालों को अपने साथ लिये हुए अंतिम परिणाम तक पहुँचाकर अपना अभिप्रेत भाव उत्पन्न करता है।

वस्तु

संसारिक जीवन अनेक अवस्थाओं में विभक्त है। राजा महाराजा से लेकर साधारण से साधारण व्यक्ति तक अपना जीवननिर्वाह करते हैं यद्यपि उनमें अवस्था के अनुसार अनेक बातों में भेद रहता है, पर संसार में मनुष्य मात्र एक ही प्रकार के रोगों, भावनाओं और विचारों आदि से प्रेरित होता है। उन्हें एक ही प्रकार का कहने में हमारा तात्पर्य यही है कि मनुष्य मात्र में सुख–दुःख, स्नेह–घृणा, दया–कुरता, ईर्ष्या–द्नोष आदि के भेद और जीवन के साधारण प्रश्न जैसे दरिद्रता, संपन्नता, स्वास्थ्य, रोग, मित्रता, शत्रुता आदि की अवस्थाएँ समय पर उपस्थित होती हैं और अपना प्रभाव दिखाकर जीवन को सुखमय या दुःखमय बनाती अथवा उसमें उलट–फेर करती हैं।

साधारण तथा देखने की बात यह होती है कि कहीं उसके जीवन की साधारण और तुच्छ बातों की ओर तो विशेष ध्यान नहीं दिया गया है और ऐसी बातों की उपेक्षा तो नहीं की गई है जो मानव–जीवन में सर्वथा व्याप्त रहती हैं और जिन्हें हम जीवन का मूल भाव कह सकते हैं। काव्य में हम जीवन की व्याख्या कह चुके हैं। अतएव किसी अच्छे उपन्यास की महता इसी में होती है कि वह उन बातों पर अधिक जोर दे जो जीवन को उत्साहपूर्ण, उद्योगी, दृढ़ और शिक्षामय बनाती हैं। एक कृषक के जीवन की साधारण से साधारण घटनाओं को ले सकते हैं। अथवा यह कहा जा सकता है कि जीवन का दुःखमय अंत या उसकी सफलता की पराकाष्ठा ही अधिक प्रभावोत्पादक होती है। पर किसी अच्छे उपन्यास की महत्ता इसी बात में होती है की वह उन बातों को अपना मुख्य आधार बनावे जो मनुष्य मात्र के जीवन संग्राम और उसकी संपत्ति व विपत्ति की घटनाओं से संबंध रखने के कारण हमारे मर्म को स्पर्श करनेवाली हो।

उपन्यास में एक उद्देश्य खाली समय में चित बहलाना और दिन भर के परिश्रम तथा थकावट के उपरांत चित को शांति देना भी है। जो उपन्यास यह उद्देशय सिद्ध करते हैं और उच्चकोटि के आनन्द का उद्रेक करते हुए हृदय को शक्ति और उत्साह से संपन्न करते हैं, वे अवश्य अच्छे उपन्यासों में गिने जाने के योग्य होते हैं। पर इनमें भी कथा कहने का ढंग, चरित्र–चित्रण में कौशल अथवा मनोविनोद या परिहास आदि के गुणों के रहने के कारण कथा–वस्तु के साधारण होने पर भी उपन्यास उत्तम श्रेणी का हो जाता है। अतएवं इन छोटे–छोटे उपभेदों के रहते हुए भी यह मानना पड़ेगा कि किसी उपन्यास की महत्ता बहुत कुछ उसकी वस्तु पर अवलंबित रहती है। पर केवल वस्तु की महत्ता ही किसी उपन्यास का महत्व नहीं स्थापित कर सकती। उस वस्तु को उद्योग में लाने या कथा कहने का ढंग तथा इस कार्य में कौशल उसमें महत्वपूर्ण गुण उत्पन्न करने में सहायक होते हैं। अतएव किसी उपन्यासकार की विशेष शक्ति तथा कौशल तब तक निरर्थक होंगे, जब तक वह मानव–जीवन के रहस्यों से भली–भाँति परिचित न होगा।

उपन्यास की कथा कहने के तीन ढंग हैं। पहले तो उपन्यासकार, इतिहासकार का स्थान ग्रहण करके वर्णनीय कथा से अपने को अलग रखकर अपने वस्तु–विधान का क्रमशः

उद्घाटन करता हुआ पढ़नेवालों को अपने साथ लिये हुए अंतिम परिणाम तक पहुँचाकर अपना अभिप्रेत भाव उत्पन्न करता है। दूसरे ढंग में उपन्यासकार नायक का आत्मचरित उसके मुँह से अथवा कभी–कभी किसी उपपात्र या गौण पात्र के मुँह से कहलाता है। तीसरा ढंग वह है जिसमें प्रातःचिडियों आदि के द्वारा कथा का उद्घाटन किया जाता है। तीसरा ढंग बहुत कम और पहला ढंग बहुत अधिक काम में लाया जाता है। पहले ढंग का अनुसरण करने में ग्रंथकार को अपना कौशल दिखाने का पूरा–पूरा अवसर मिलता है। दूसरे और तीसरे ढंग का अनुसरण करने में उसे कई कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। इनमें कई कठिनाइयँ यह है कि वह अपनी समस्त सामग्री का यथोचित उपयोग नहीं कर सकता है।

पात्र

उपन्यासकार चाहे अपने साधारण अनुभव का उपयोग करे, चाहे अपने असाधारण अनुभव की परीक्षा करे, उसके पात्रों को सजीव स्त्री–पुरूषों की भाँति अपनी भूमिका संपादित करनी चाहिए और अपनी मानवी स्थिति का भाव हमारे मन पर अंकित कर देना चाहिए। उपन्यासों को पढ़कर क्यों हम उनके पात्रों को अपने समान सजीव पुरूष या स्त्री मान बैठते हैं और उनसे मनुष्योचित आचरण करने को उध्यत हो जाते हैं। यह विषय मनोविज्ञान का है, अतएव हमारे लिये इस पर विस्तारपूर्वक विचार करना अप्रासंगिक और अनावश्यक है। हम केवल यह निर्देश कर सकते हैं कि विभावना की तीव्रता या उत्कर्ष और कल्पना की यथार्थ कार्य शक्ति ही इस स्थिति के मूल में है। इन्हीं दोनों मानसिक प्रवृत्तियों से प्रेरित होकर हम कल्पित पात्रों को भी वास्तविकता का रूप दे देते हैं। यह समझ लेना चाहिए कि मानसिक सृष्टि का क्रम निर्धारित करना उनके लिए कठिन नहीं है जो ऐसी कल्पनाओं के मायाजाल में फँसते हैं बल्कि वे विद्वान भी जो उसके निर्माता है, उसका रहस्य समझने में असमर्थ हैं। एक विद्वान का कथन है– "यह शक्ति आध्यात्मिक है। कभी–कभी तो यह मानों लेखक के हाथ से कलम पकड़ लेती है और उनके पात्रों का अनुशासन करने में असमर्थ हो जाता हूँ, और वे मुझे जहाँ चाहते हैं, ले जाते हैं।"....5

इसका तात्पर्य यही है कि उसने पात्रों को स्वतंत्र संकल्पशक्ति से संपन्न कर दिया है और उनका अनुशासन करना अर्थात् अपनी इच्छा के अनुसार उनसे काम लेना उसके सामर्थ्य से बाहर हो गया है। वे स्वतंत्र संकल्पवाले पात्र अपने मनोवेगों से प्रेरित होकर काम करते हैं, और कभी–कभी उनके कथन या कार्य ऐसे हो जाते हैं जिनका लेखक को कभी अनुमान भी नहीं होता। यहाँ हम कल्पना–शक्ति की पराकाष्ठा देखते हैं और इसके रहस्य का उद्‌घाटन करना लेखक या समालोचक दोनों के लिए असंभव हैं। सृष्टि वैचित्र्य का सिद्धांत ही इस मानसिक कल्पना में गर्भित जान पड़ता हैं।

चरित्र

चित्रण में प्रायः दो उपायों का अवलंबन किया जाता है। एक को विश्लेषणात्मक या साक्षात् और दूसरे को अभिनयात्मक या परोक्ष कहते हैं। पहले प्रकार में उपन्यास–लेखक अपने पात्रों का चरित्र–चित्रण स्वयं अपने शब्दों में कराता है। वह पात्रों के भावों, विचारों, प्रकृतियों और रागद्वेषों को समझता, उनकी व्याख्या करता, उनके कारण बताता और प्रायः उन पर अपना विवेचन पूर्ण मत भी प्रकट करता है। दूसरे प्रकार में लेखक आप मानों अलग–अलग खड़ा रहता है और स्वयं पात्रों को अपने कथन और व्यापार से तथा उसके संबंध में दूसरे पात्रों की टीका–टिप्पणी तथा संमति से अपना चरित्र करने देता है।

कथोपकथन

कथोपकथन का सुचारू रूप से प्रयोग किसी उपन्यास की आकर्षक शक्ति को बहुत बढ़ा देता है। उपन्यास के इस तत्व के द्वारा हम उसके पात्रों से विशेष परिचित होते और दृश्य–काव्य की सजीवता और वास्तविकता का बहुत कुछ अनुभव करते हैं। वह कथा को चटकीला बना देता और लेखक का कौशल स्पष्ट प्रकट कर देता है।

कथोपकथन का पहला उद्देश्य वस्तु का विकास तथा पात्रों का चरित्र–चित्रण होना चाहिए। असंबद्ध बातें लाने में इसका प्रयोग कदापि नहीं होना चाहिए, चाहे वे बातें कितनी ही मन को प्रसन्न करनेवाली और परिहास का संचार करनेवाली क्यों न हो। जिस बात का उपन्यास की कथा, उसके उद्देश्य अथवा पात्र से कोई संबंध न हो, उसके विषय में कुछ

कहना या लिखना मानों उसमें स्पष्ट असंगति–दोष लाना है। कथोपकथन में बाहरी अथवा ऐसी बातों का प्रयोग, जो देखने में तो अप्रासंगिक जान पड़े पर वास्तव में वैसी न हो, वहीं तक क्षम्य है, जहाँ तक वे बातें वस्तु–विकास में सहायक अथवा पात्रों के चरित्र–चित्रण में विशेष उपयोगी हो। इस अपवाद को छोड़कर कथोपकथन स्वाभाविक, उपर्युक्त और अभिनयात्मक होना चाहिए।

यद्यपि कथोपकथन का उद्देश्य प्रायः वस्तु विकास करना, माना जाता है, पर वास्तव में उसका संबंध पात्रों से है। उसके द्वारा रागद्वेष, प्रवृत मनोवेग आदि का प्रस्फुटन, पात्रों की स्थिति का घटनाओं के अनुकूल परिवर्तन और उसका एक दूसरे पर प्रभाव बहुत अच्छी तरह दिखाया जा सकता है। कुशल लेखक, जो अभिनयात्मक ढंग को अधिक पसंद करता हो, इसके द्वारा चरित्र का विश्लेषण तथा उसकी व्याख्या बड़ी सुगमता से कर सकता है, और यदि ऐसा करने में स्वाभाविकता बनी रहे, तो मानों, सोने में सुंगध आ जाती है। यदि विश्लेषणात्मक ढंग का भी प्रयोग किया जाय, तो भी वह लेखक की उद्देश–सिद्धि में बड़ी सहायता पहुँचा सकता है। साधारण बात–चीत में अथवा उद्योग या उत्तेजना की अवस्था में माध्यम मार्ग का ग्रहण करना ही उचित होगा। लेखक का उद्धेय होना चाहिए कि वह साधारण लोगों की नित्यप्रति की साधारण बात–चीत के अनुरूप ही अपने पात्रों से कथोपकथन न करावे, बल्कि उसे ऐसा रूप दे जिसमें अभिनय के द्वारा तथा शक्ति के साथ ही साथ स्वाभाविकता और वास्तविकता का प्रत्यय रूप भी देख पड़े।

देश और काल

उपन्यास के देश और काल से तात्पर्य उसमें वर्णित आचार–विचार, रीति–रिवाज, रहन–सहन और परिस्थिति कह सकते है– एक तो सामाजिक और दूसरा ऐतिहासिक या सांसारिक ऐसे उपन्यास लिखना सहज नहीं है जिनमें जीवन या समाज के सभी में भी काम आते हैं। आधारणतः अधिकांश उपन्यास ऐसे होते हैं जिनमें जीवन अथवा समाज के दो या एक अंगों का चित्र खींचा गया हो। कोई उपन्यास साधारण गार्हस्थ्य जीवन से संबंध रखता है और कोई किसी ऐतिहासिक घटना पर अवलंबित होता है। पर फिर भी

दोनों में से कोई पूर्ण व्यापक नहीं हो सकता। गार्हस्थ्य जीवन के भी अनेक अंग हैं। किसी उपन्यास में कलह–प्रिय स्त्रियों का चरित्र चित्रित होता है, किसी में नवयुवकों का नैतिक पतन दिख्लाया जाता है, किसी में धनवानों के विलास और नाश का प्रदर्शन होता है, किसी में दरिद्रों के कष्टपूर्ण जीवन का निरूपण होता है।

बहुधा ऐसा होता है कि उपन्यास का आरंभ तो साधारण परिस्थिति में होता है, पर आगे चलकर उसके नायक को कठिन, असाधारण और विपरीत परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है। लेखक चाहे जिस प्रणाली का अनुसरण करे और चाहे जिस अवस्था का चित्र खींचे, पर यह स्पष्ट है कि उसे चरित्र–चित्रण में देश, काल और परिस्थिति आदि का पूरा–पूरा ध्यान रखना पड़ेगा। हमें यह भी स्मरण रखना चाहिए कि बहुत से उपन्यास आदि तो केवल इसलिये मनोरंजक होते हैं कि उनमें समाज के किसी विशिष्ट वर्ग, देश के किसी विशिष्ट भाग अथवा काल के किसी विशिष्ट अंश से संबंध रखनेवाला ही वर्णन होता है। ऐसी दशा में जिस उपन्यास का वर्णन जितना ही सटीक और स्वाभाविक होगा, वह उपन्यास उतना ही अच्छा माना जायगा।

ऐतिहासिक उपन्यासों में इन बातों का ध्यान रखने की और भी अधिक आवश्यकता होती है, क्योंकि उनमें लेखक को किसी विशिष्ट युग अथवा काल का चित्र अंकित करना पड़ता है। कुछ उपन्यास तो स्वयं ऐतिहासिक घटनाओं से ही संबंध रखते हैं, पर कुछ ऐसे भी होते हैं जिनके कथानक का इतिहास से बहुत थोड़ा संबंध होता है और जिनमें किसी ऐतिहासिक काल के सामाजिक अथवा और किसी प्रकार के जीवन का चित्र रहता है। ऐतिहासिक उपन्यास का महत्व तो केवल इसी में हैं कि उसमें किसी प्राचीन काल के जीवन का पूर्ण और विस्तृत वर्णन किया जाय, जिससे पाठकों के सामने उस काल का जीता–जागता चित्र उपस्थित हो जाय। और यह बात तभी हो सकती है जब लेखक ने उस काल की सभी बातों का भली–भाँति अध्ययन किया हो, और साथ ही उसमें उनका ठीक–ठीक वर्णन करने की पूरी शक्ति भी हो।

ऐतिहासिक उपन्यास लिखनेवाले का काम ही यह है कि पुरातत्व और इतिहास के जानकारों ने जिन रूखी–सूखी बातों का संग्रह किया हो, उनको वह सरस और सजीव रूप देकर अपने पाठकों के सामने उपस्थित करे, और उसे वह अपने कौशल के द्वारा एक सर्वांगपूर्ण चित्र प्रस्तुत करे। ऐतिहासिक उपन्यासों के पाठक तो उसी लेखक का सबसे अधिक आदर करते है जो किसी विशिष्ट अतीत काल का बिलकुल सच्छा, जीता–जागता और साथ ही मनोरंजक वर्णन कर सके। इससे उसके पंडित्य और पुरातत्व–ज्ञान का भी आदर होता है, पर उतना अधिक नहीं जितना उसकी वर्णन–शक्ति का। हाँ, उस दशा में पुरातत्व ज्ञान का भी विशेष आदर हो सकता है, जब उपन्यास की आधारभूत घटनाएँ बहुत ही कम ज्ञान हो। पर इस विषय का विशेष विवेचन प्रस्तुत विषय से अधिक संबंध नहीं रखता इसलिए यह कहना पर्याप्त समझते हैं, कि जिस ऐतिहासिक काल की घटनाओं के आधार पर कोई उपन्यास लिखा जाय, उस काल के विचारों, भावों, व्यवहारों और परिपाटियों आदि का उसमें ठीक–ठीक और पूरा वर्णन होना चाहिए।

शैली

प्रत्येक इनसान को भी अपना अपना शैली होता है। वैसे ही साहित्यकार को भी ऐसे ही हैं, प्रत्येक प्रकार की कल्पना प्रधान रचना में शैली का विशेष महत्व होता है। मूलतः शैली ही एक ऐसा तत्व है जो रचनाकार के वैशिष्ट्य का उद्घोष करता है। विषय–वस्तु को जिन प्रणालियों से तथा जिन साधनों से प्रस्तुत करने का प्रयत्न होता है, उन सबका समावेश शैली तत्व में हो जाता है। भारतीय साहित्य– शास्त्र में इसे ही रीति कहते हैं।

शैली मूलतः व्यक्ति–सापेक्ष होती है। प्रत्येक लेखक अपनी शैली का निर्माण स्वयं करता है। शैली ही ऐसा तत्व है, जिससे लेखक के व्यक्तित्व की झलक मिलती है। विषय–वस्तु आदि की मौलिकता तो महत्वपूर्ण होती है, किन्तु सबसे महत्वपूर्ण बात है शैली की मौलिकता। वस्तुतः रचना की मौलिकता का बहुत कुछ शैली पर निर्भर करता है। एक ही विषय पर दो या दो से अधिक लेखक, लिखें, प्रत्येक अपनी अभिव्यक्ति की विशिष्टता के कारण दूसरे से भिन्न होगा।

उद्देश्य

इस उद्देश्य से तात्पर्य जीवन की व्याख्या अथवा ओलोचना से है। नाटक की भाँति उपन्यास का भी जीवन के साथ सबसे अधिक और घनिष्ठ संबंध है। उपन्यायों में मुख्यतः यही दिखलाया जाता है कि पुरुषों और स्त्रियों के विचार, भाव और पारस्परिक संबंध आदि कैसे हैं। वे किन–किन कारणों अथवा प्रवृत्तियों से प्रेरित होकर कैसे–कैसे करते हैं, अपने प्रयत्नों में वे किस मनोविकास को उत्पन्न होते हैं। उपन्यास लेखक का जीवन के किसी एक अथवा अनेक अंगों के साथ बहुत ही घनिष्ठ संबंध होता है, इसलिये किसी न किसी रूप में यह प्रकट करना उसका कर्तव्य हो जाता है कि, जीवन के साधारण और असाधारण सभी व्यापारों का उस पर क्या और कैसा प्रभाव पड़ा है। कुछ विशेष सिध्दांतों अथवा विचारों के प्रतिपादन के उद्देश्य से तो बहुत ही कम उपन्यास लिखे जाते हैं, पर सभी उपन्यासों में कुछ न कुछ विशेष विचार अथवा सिध्दांत आप से आप आ जाते हैं। यदि किसी छोटी से छोटी कहानी सिध्दांत मिल ही जायगा। तो फिर उपन्यासों में जीवन–संबंधी ऐसे नैतिक सिद्धांत या विचारों को पाया जाना तो बहुत ही साधारण बात है।

कुछ लोग कहते हैं कि उपन्यास खाली में केवल दिल बहलाने के उद्देश्य से ही लिखे जाते हैं, इसलिए उनमें जीवन–संबंधी गूढ़ सिध्दांतों और तत्वों को ढूँढना ठीक नहीं। बहुत ही साधारण कोटि के उपन्यासों के संबंध में यह कथन ठीक हो सकता है, पर उच्च कोटि के उपन्यासों के संबंध में यह बात नहीं कही जा सकती। जीवन–संबंधी कुछ न कुछ सिध्दांत और तत्व तो साधारण उपन्यासों में भी हो सकते हैं, पर वे स्पष्ट रूप से उसी लिये हमारे सामने नहीं आते कि उनके लेखकों में उन्हें व्यक्त करने की यथेष्ट शक्ति ही नहीं होती। पर बड़े–बड़े उपन्यास लेखक अच्छे अनुभवी और विचारशील होते हैं। वे लोगों के विचारों, भावों और व्यवहारों आदि का भली–भांति निरीक्षण करके उनके संबंध में पूर्ण ज्ञान प्राप्त करते हैं, और उस अनुभव तथा ज्ञान की सहायता से वे नैतिक महत्व का ऐसी अच्छा चित्र अंकित करते हैं, जिसकी कोई विचारशील पाठक कभी उपेक्षा कर ही नहीं

सकता। यही कारण है कि किसी अच्छे उपन्यास की चर्चा छिड़ती ही आप से आप जीवन के भिन्न भिन्न अंगों नीति–शास्त्र के भिन्न–भिन्न सिद्धांतों की चर्चा होने लगती है।

परंतु इसका यह तात्पर्य नहीं है कि कोई उपन्यास–लेखक अपने उपन्यास में बड़े–बड़े नैतिक सिध्दांत अथवा जीवन–संबंधी अच्छे आदर्शों की ही भरमार कर दे। यह अवश्य है कि जीवन के संबंध में उसके जो विचार अथवा आदर्श होंगे, उन्हीं के अनुसार वह अपने उपन्यास का वस्तु–विन्यास तथा उसके पात्रों का चरित्र–चित्रण करेगा। पर उसका यह कृत्य गौण होगा और उसका वर्णन करना होगा, अर्थात् वह केवल यही दिखलायेगा कि जीवन साधारणतः किस प्रकार व्यतीत किया जाता है। साधारण जीवन का जो चित्र वह अंकित करेगा वह अवश्य ऐसा होगा जिससे लोग शिक्षा ग्रहण करते हुए कुछ नैतिक सिध्दांत अथवा आदर्श भी स्थिर कर सकें। "जीवन के संबंध में लेखक का जो कुछ अनुभव या निरीक्षण होगा, वह अवश्य लोगों के जीवन–सुधार में बहुत कुछ सहायक होगा। केवल इसी दृष्टि से उपन्यास का उद्देश्य निरमित होना चाहिए" ।....6

उपन्यास के प्रकार

उपन्यास–साहित्य का अत्यधिक विस्तार और विकास हुआ है। इस क्षेत्र में अनेक प्रकार के नवीन प्रयोग भी हुए हैं। सामान्यतः उपन्यासों का वर्गीकरण दो आधार पर किया जाता है।

- ❖ वर्णन–प्रणाली
- ❖ वर्ण्य विषय

♦ वर्णन–प्रणाली

कथा–वस्तु इतिहास से गृहित होने के कारण ही कोई उपन्यास ऐतिहासिक कहा जाता है, जबकि वह घटना–प्रधान हो सकता है, चरित्र–प्रधान हो सकता है अथवा नाटकीय भी हो सकता है।

वर्णन–प्रणाली

संलापात्मक रूप में और नाटक–विधान की शैली के रूप में, संलापात्मक शैली का प्रयोग भी आंशिक रूप में ही होता है। सारा उपन्यास इसी शैली में नहीं लिखा जा सकता और नाटकीय विधान भी उपन्यास में कहीं–कहीं योजित होता है। वस्तुतः ऐतिहासिक शैली में इसका भी अन्तर्भाव हो जाता है। इन शैलियों के अतिरिक्त और भी शैलियाँ सुविधानुसार प्रयुक्त की जा सकती है। लेखक को केवल इतना ध्यान रखना चाहिए कि वह शैलीकार ही नहीं हैं, प्रत्युक्त वह उपन्यासकार है।

♦ वर्ण्य विषय

ऐतिहासिक उपन्यास में वातावरण के निर्माण के लिए भाषा को भी विशेष रूप में प्रयोग करना पड़ता है। हिन्दी के उपन्यासों में संस्कृत गर्भित भाषा का प्रयोग करके लेखक प्राचीन परिवेश का आभास देने का प्रयास करता है। सामाजिक उपन्यास में भी भाषा के प्रयोग का महत्व दिया जाता है और व्यक्ति–विशेष के सामाजिक और पारिवारिक परिवेश को ध्यान में रख कर उसका प्रयोग किया जाता है।

वर्ण्य विषय

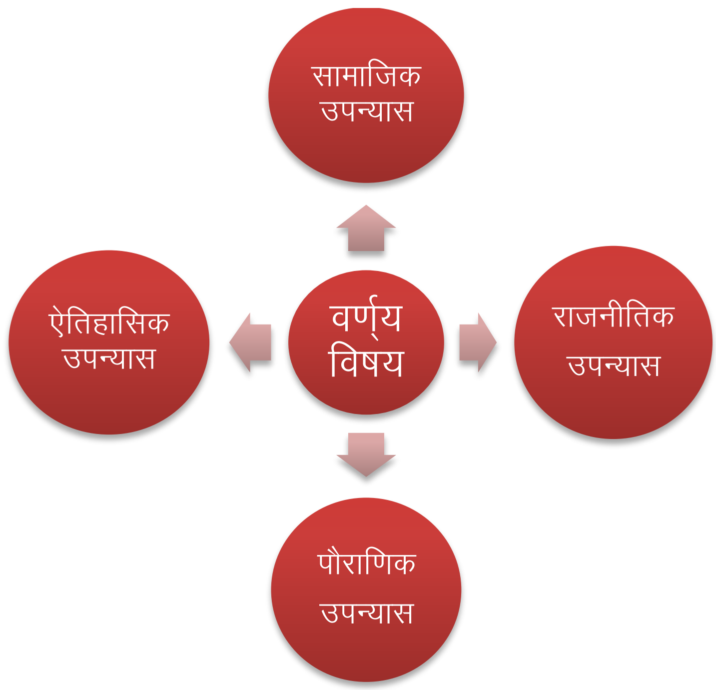

कथा–वस्तु इतिहास से गृहित होने के कारण ही कोई उपन्यास ऐतिहासिक कहा जाता है, जबकि वह घटना–प्रधान हो सकता है, चरित्र–प्रधान हो सकता है अथवा नाटकीय भी हो सकता है। ऐतिहासिक उपन्यास अतीत का चित्र प्रस्तुत करता है। ऐतिहासिक के अतिरिक्त मनोवैज्ञानिक उपन्यास भी एक नए प्रकार के रूप में परिगृहीत किया जाता है।

1.3 प्रासंगिक काल में उपन्यास की आवश्यकत्ता एवं महत्ता

उपन्यास में जीवन की आलोचना अथवा नैतिक सिद्ध ांत का प्रतिपादन दो प्रकार से होता है। कुछ उपन्यासकार, नाटककार, लेखक की भाँति सब घटनाओं और बातों को उनके वास्तविक रूप में ही अपने पाठकों के सामने उपस्थित कर देते हैं। ''संसार के मनुष्य और चरित्रों को वे जिस रूप में देखते अथवा पाते हैं, उसी रूप में वे उनको चित्रित करके छोड़ देते हैं और वस्तु विन्यास के ढंग से ही वे अपने नैतिक सिद्धांतों का प्रतिपादन कर देते हैं।''....7 अर्थात् वे अपनी कल्पना की सहायता से संसार का एक सूक्ष्म अथवा संक्षिप्त रूप ऐसे ढंग से अंकित करते हैं। जिससे कुछ नैतिक सिद्धांत स्थिर किये जा

सकते हैं। केवल पात्रों के चरित्र–चित्रण और कथानक के विकास से ही हैं। वे दमन अथवा नीति, संबंधी अपने विचार और सिद्धांत प्रकट कर देते हैं और आलोचक का यह काम रह जाता है कि वह उपन्यास, उधर–इधर में बिखरी हुई बातों के आधार हर कुछ नैतिक निष्कर्ष विकाल ले।

यहाँ तक तो उपन्यास और नाटक दोनों एक ही ढंग से चलते हैं। दोनों कुछ घटनाओं अथवा बातों को लोगों के सामने उपस्थित कर देते हैं और परिणाम निकालने का काम पाठकों पर छोड़ देते हैं। नाटककार को तो स्वयं प्रत्यक्ष रूप से कुछ भी कहने का अधिकार नहीं होता पर उपन्यासकार, टिप्पणी कर सकता है। वह यदि चाहे तो बीच में स्वयं भी टीका उपन्यास में दिए चरित्रों की आलोचना और कार्यों की व्याख्या कर सकता है और उनसे कुछ नैतिक सिद्धांत निकालकर लोगों के सामने रख सकता है।

जब वह अपना यह अधिकार काम में लाता है और अप्रत्यक्ष रूप से चरित्र अंकित करने के साथ ही साथ प्रत्यक्ष रूप से उसकी आलोचना भी करने लगता है तब वह मानो, अपने रचे हुए संसार का आप ही आलोचक और व्याख्यातक भी बन जाता है। उस दशा में उसकी वहीं आलोचना और व्याख्या बाहरी संसार की भी आलोचना और व्याख्या हो जाती है। यही जीवन की आलोचना का प्रत्यक्ष और दूसरा प्रकार है।

1.4 वैश्वीकरण और हिन्दी उपन्यास

हिन्दी उपन्यास में मूल–संक्रमण की भूमंडलीकरण स्थिति का चित्रण दो रूपों में मिलता है– प्रथमतः इस रूप में कि घटना ओर पात्रों के माध्यम से इस परिवर्तित मूल दृ ष्टि का परिचय दिया गया है और दूसरे चिंतन मनन के स्तर पर इस मूल–परिवर्तन पर अपनी सोच प्रस्तुत करते हुए मूल्य–चरम पर अपनी पीड़ा को अभिव्यक्ति दी गई है। इसलिए इस अभिव्यक्ति रचना में प्रायः कम ही मिलती है और दायित्व के साथ यह कहा जा सकता है कि मूल क्षरण पर अपनी पीड़ा की अभिव्यक्ति अधिकांशतः साहित्यकारों की वरिष्ठ पीढ़ी द्वारा ही हुई है। उन्होंने अपने अनुभव के आधार पर मूल–क्षरण का पीड़ा–भरा

आख्यान रचा है। इसे कुछ सशक्त उपन्यासकारों के संदर्भ में विश्लेषित किया जा सकता है।

क्षरित होते श्रेष्ठ जीवन मूल्यों को बचाने की चिंता साहित्यकार की चिंता है। वह भी शेष संसार के साथ उसी गति और विधि से क्यों नहीं चल सकता? साहित्यकार, उपन्यासकार की चिंता कबीर की ही चिंता है जो "सुखिया संसार" के बीच "दुखिया" बनकर जागता और रोता है– "सुखिया सब संसार है खावे और सोवे जागे और, दुखिया दास कबीर है, रोवे।"....8 यही पीड़ा तुलसी की रही जिन्होंने सबसे भले भूढ़ जन जिन्हें न व्यापै जगत गति कहकर मानव–कल्याण के लिए अपनी सारी शब्द साधना की।

कमलेश्वर के कितने पाकिस्तान उपन्यास का कथन है कि प्रत्येक युग में साहित्यकार आजीव ही मानवीय मूल्यों की चिंता करता है। इसलिए प्रत्येक अत्याचार के खिलाफ उसकी शब्द शक्ति फूट पड़ती है, "मत भूलो महमूदा किसी भी दौर के अत्याचारों, अनाचारों के खिलाफ खड़ा होनेवाला कोई–न–कोई अजीब हमेशा एक नैतिक अदालत बनकर मौजूद रहता है।"....9 उपन्यास में वृद्ध को अथवा की ही प्रतिकृति के रूप में प्रस्तुत किया गया है जिसे जहाँ भी मानवीयता, मानवीयता की विलुप्ति की पीड़ा निरंतर सालती है वहाँ अपने को खड़ा पाता है। इंसानियत की हत्या होती है।

काशिनाथ सिंह काशि का अस्सी में मनुष्यता को बचाने की चिंता इसी रूप में करते हैं, कि आज जब हम भौतिक दृष्टि से उन्नति और तो हम मानवीयता का इतना समृद्धि के चरम सोपान आयत्त कर रहे हैं, ह्रास क्यों देख रहे आज हम डॉक्टर, सब बनना चाहते हैं, अफसर, इंजीनियर आदमी कोई नहीं बनना चाहता। उपन्यास में आया यह संक्षिप्त सा वाक्य बहुत कुछ कह देता है। "आदमी के सिद्धांत और शुचितापूर्ण जीवनचर्या विगत की बात हो गई है। पूरी दुनिया में मानवाधिकारों का जो हनन हो रहा है। बदमाशी के सैलाब उमड़ रहे, बेईमानी, यातना, उत्पीड़न, कष्ट, हत्या है, लेकिन फिर भी कुछ ऐसा है जो शुभ है।"....10

1.5 निष्कर्ष

शुभ को बचाने की चिंता साहित्यकार की चिंता है किसी भी साहित्यकार की चिंता है। कदाचित् सारि शब्द साधना मानव के शुभ श्रेष्ठ जीवन मूल्यों को बचाने की चिंता है। ऐसा है, हिन्दी उपन्यास जगह में कुछ उपन्यास स्वतंत्र लिखे गया था चित्रा मुद्गल का "गिलिगिड", काशीनाथ सिंह का "रेहन पर रग्घू" कृष्णा सेबती का "समय सरगम" रवीन्द्र वर्मा का "आखिरी मंजिल" रमेशचन्द्र शाह का "सफेद परदे पर", "विनायक" आदि इस तरह वैश्वीकरण हिन्दी साहित्य में अपना कदम बढा रहा है|....11

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. कुमुद शर्माः हिन्दी के निर्माता – पृ.सं : 361
2. उपन्यास और आलोचना – सुखदेव पाण्डेय – पृ.सं : 42
3. उपन्यास और आलोचना – सुखदेव पाण्डेय – पृ.सं : 92
4. हिन्दी साहित्य का इतिहास – नगेन्द्र – पृ.सं : 513
5. हिन्दी साहित्य का इतिहास – नगेन्द्र – पृ.सं : 617
6. साहित्यालोचन – स्याम सून्दर दास – पृ.सं : 163,
7. उपन्यास विधा – सुनिता कुमार – पृ.सं : 95
8. कमलेश्वर – कितने पाकिस्तान – पृ.सं : 68
9. काशी नाथ सिंह – काशी का अस्सी – पृ.सं : 113
10. विज्ञान की आधुनिक उपलब्दियाँ – योगेन्द्रनाथ भटनागर
11. सूचना : एक अधिकार – नीलू शाह
12. कुछ खारा, कुछ खोटा, राजबुद्धि राजा